काशिकावृत्ति षष्ठाध्याय पदकृत्यों का

विवेचनात्मक अध्ययन

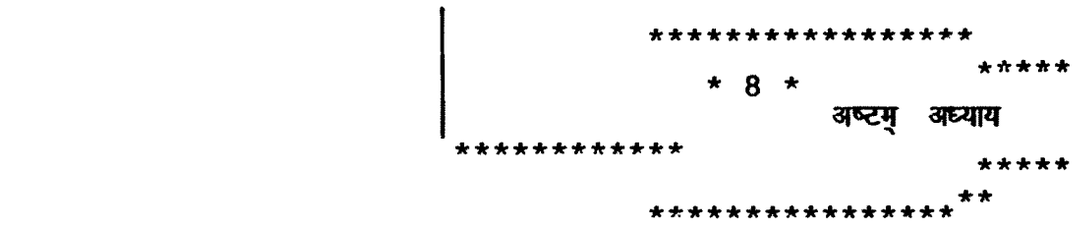

1 सार्वधातुक प्रकरण

2 एत्वादिविधि प्रकरण

3 प्रकृतिभाव प्रकरण

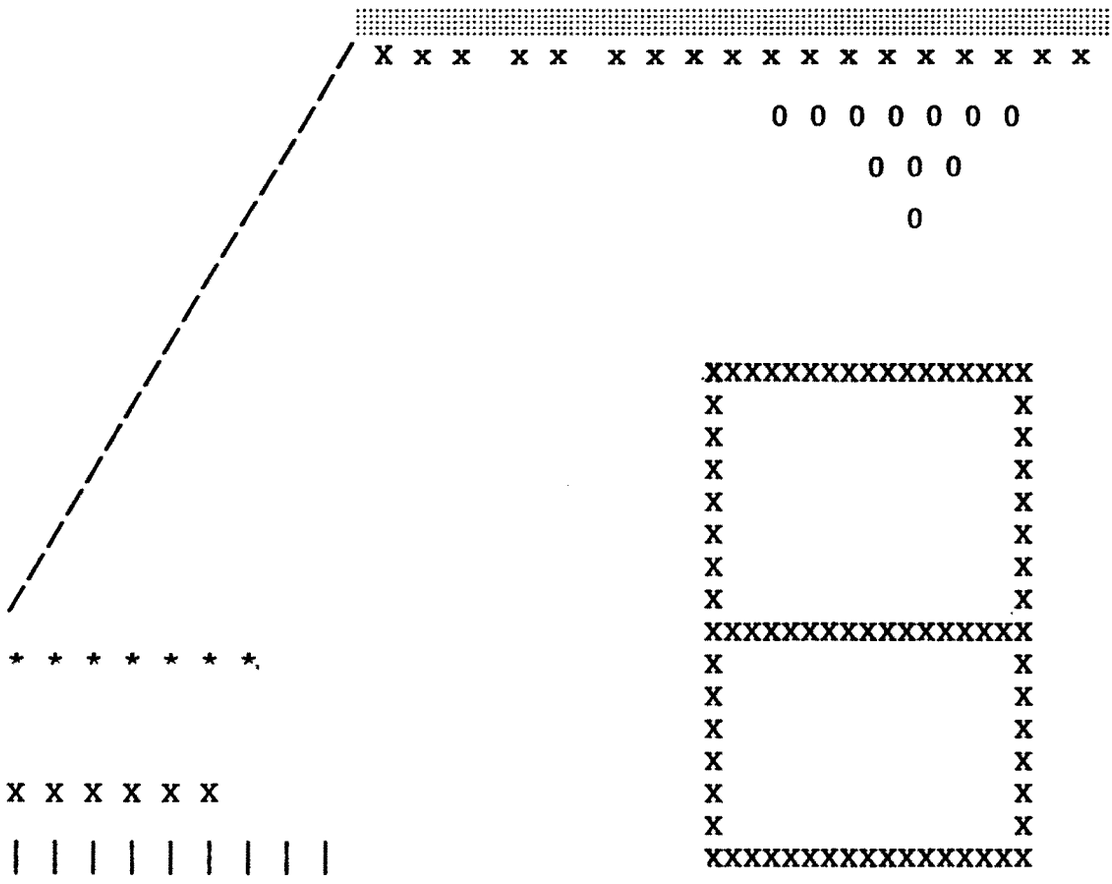

पदकृत्य - I.0

श्नु प्रत्ययान्त अङ्.ग तथा इवर्णान्त, उवर्णान्त धातु एवं भ्रू शब्द को अच् परे रहते इयङ्., उवङ्. आदेश हो जाते हैं[1] यथा - आप्नुवन्ति । चिक्षियतुः । लुलुवतुः । भ्रुवौ । भ्रुवः ।

पदकृत्य - I.1

अचीति किम् ?

विचार्यमाण 'अचिश्नुधातुभ्रुवां0' सूत्र में अचि पदकृत्य का यह प्रयोजन है कि हल् के परे रहते सूत्रोपदिष्ट इयङ्., उवङ्. आदेश न हो । जैसे - आप्नुयात् ।

प्रस्तुत पदकृत्य पर विवेचनात्मक दृष्टिपात करनेपर निष्कर्ष यही निकलता है कि प्रस्तुत 'अचि' पदकृत्य को प्रस्तुत सूत्र में ग्रहण करने का लाभ यही है कि अच् परे रहने पर ही सूत्रोपदिष्ट कार्य इयङ्., उवङ्. आदेश हों ।

अगर प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण सूत्र में नहीं किया जाता, तो हल् के परे रहने पर भी इयङ्., उवङ्. आदेश हो जाता । 'आप्नुयात्' उदाहरण में 'आप् + श्नु + यासुट् + त्' इस स्थिति में यहाँ श्नु प्रत्ययान्त अङ्.ग तो है, किन्तु उससे परे अच् होने की अपेक्षा हल् है । अतः श्नु प्रत्ययान्त अङ्.ग को उवङ्. आदेश नहीं होता । अगर प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता, तो हल् परे रहते भी सूत्रोपदिष्ट कार्य होकर अतिव्याप्ति दोष हो जाता । अतः भाषा के साधुत्व रूप के लिए प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण अपरिहार्य है ।

पदकृत्य - I.2

श्नुधातुभ्रुवामिति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में प्रस्तुत पदकृत्य श्नु प्रत्ययान्त, इवर्णान्त - उवर्णान्त धातु व भ्रु अङ्.गों का परिगणन् कर देने से किसी अन्य अङ्.ग को अच् के परे रहते इवङ्., उवङ्. आदेश नहीं होंगे । जैसे - लक्ष्म्यै ।

---

1 - अष्टा0 6/4/77

यहाँ 'लक्ष्मी + आट् + ङे.' इस स्थिति में अच् के परे रहते इयङ्. आदेश नहीं हुआ । अतः 'आटश्च'[1] से वृद्धिरूप एकादेश एवं इकोयणचि[2] से यणादेश होकर 'लक्ष्म्यै' रूप सिद्ध हो गया । अगर यहाँ प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता, तो यहाँ अच् 'आट्' के परे रहते इयङ्. आदेश होकर अनिष्ट की प्राप्ति होती और भाषा में असाधुत्वरूपों की वृद्धि होती ।

पदकृत्य - I.3

य्वोरिति किम् ?

'अचिश्नुधातुभ्रुवां0' सूत्र में 'य्वोः' पदकृत्य इस हेतु से रखा गया है कि इवर्णान्त व उवर्णान्त धातुओं को ही अच् के परे रहते इयङ्., उवङ्. आदेश हों, अन्य धातुओं को न हों । यथा - चक्रतुः ।

यहां कृ धातु, लिट्, अतुस्, द्वित्व, उरत्[3] हलादिः शेषः[4] आदि कार्य होकर 'चकृ + अतुस्' ऐसी स्थिति बनने पर प्रस्तुत पदकृत्य की उपस्थिति के कारण अतुस् के अच् के परे रहते कृ धातु को इयङ्. या उवङ्. आदेश नहीं हुआ, क्योंकि कृ धातु इवर्णान्त या उवर्णान्त नहीं है । अगर प्रकृत सूत्र में प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण नहीं करते तो सर्वत्र अच् परे रहते धातु को इयङ्., उवङ्. आदेश हो जाते ।

पदकृत्य - II.0

इवर्णान्त, उवर्णान्त अभ्यास को सवर्णभिन्न अच् के परे रहते इयङ्., उवङ्. आदेश हो जाते हैं[5] । यथा - इयेष । उवोष ।

पदकृत्य - II.1

असवर्ण इति किम् ?

'अभ्यासस्यासवर्णे' सूत्र में 'असवर्णे' पदकृत्य रखने का प्रयोजन यह है कि इवर्णान्त अथवा उवर्णान्त अभ्यास से परे सवर्ण अच् होने पर इन अभ्यासों को इयङ्. - उवङ्. आदेश न हों । जैसे - ईयतुः । ऊवतुः ।

1- अष्टा0 6/1/87
2- वही 6/1/74
3- वही 7/4/66
4- अष्टा0 7/4/60
5- वही 6/4/78

ईयतुः में इण् गतौ धातु, लिट्, अतुस्, द्वित्व आदि कार्य होकर 'इ + इ +अतुस्' यह स्थिति बनने पर इवर्णान्त अभ्यास को सवर्ण अच् (इ) परे होने के कारण इयङ्. आदेश नहीं हुआ । पश्चात् 'दीर्घः इणः किति' [1] से अभ्यास को दीर्घ एवं 'इणो यण्' [2] सूत्र से यणादेश होकर ईयतुः रूप सिद्ध हुआ । इसी प्रकार ऊवतुः शब्द में 'वेञ् + लिट्', 'वेञो वयिः,[3] वय् + लिट्, अतुस्, 'ग्रहिज्यावयि0' [4] से सम्प्रसारण, 'वश्चाऽन्यतरस्याम् किति' [5] से वय् के यकार को वकारादेश आदि कार्य होने पर 'उ + उव् + अतुस्' ऐसी स्थिति मेंउवर्णान्त अभ्यास को सवर्ण अच् के परे रहते उवङ्. आदेश नहीं होगा । तत्पश्चात् 'अकः सवर्णे0' [6] से दीर्घ एकादेश होकर ऊवतुः रूप सिद्ध होता है । अगर प्रकृत सूत्र में प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता तो 'इ + इ + अतुस्' तथा 'उ + उव् + अतुस्' इस स्थिति में सवर्ण अच् तथा उ के परे रहने पर भी इयङ्., उवङ्. आदेश हो जाता और भाषा में इष्ट प्राप्ति नहीं होती ।

पदकृत्य - III.0

धातु का अवश्य जो संयोग, वह पूर्व में नहीं है जिस इवर्ण के, तदन्त अनेकाच् अङ्.ग को अच् परे रहते यणादेश हो जाता है । [7] यथा - निन्यतुः ।

विचार्यमाण 'एरनेकाचोऽसंयोगपूर्वस्य' सूत्र में असंयोगपूर्वपद धातु के अवयव इवर्ण का विशेषण है, न कि अङ्.ग का ।

पदकृत्य - III.1

एरिति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में 'एः (इ)' पदकृत्य का ग्रहण इसलिए किया गया है कि 'असंयोगपूर्वपद' इवर्ण का विशेषण बने, अगं का न बने । अगं का विशेषण होने से यवक्रियौ,

---

1- अष्टा0 7/4/69
2- वही 6/4/81
3- वही 2/4/41
4- वही 6/1/16
5- अष्टा0 6/1/38
6- वही 6/1/97
7- वही 6/4/82

यवक्रियः प्रयोगों में 'यवक्री + औ, यवक्री + अस्' ऐसी स्थिति होने पर यणादेश की प्राप्ति होने लगती । 'एः' ग्रहण करके 'असंयोगपूर्व' पद को इवर्ण का विशेषण बना लेने पर उक्त दोष की सम्भावना नहीं रहती, क्योंकि यवक्रियौ, यवक्रियः प्रयोगों में इवर्ण से पूर्व ककार एवं रेफ का संयोग वर्तमान है । अतः यणादेश न होकर 'अचिश्नुधातु0'[1] सूत्र से इयड्. आदेश ही हो गया । अतः प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण उचित है ।

पदकृत्य - III.2

अनेकाच् इति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में 'अनेकाचः' पदकृत्य का ग्रहण इसलिए किया गया है कि एकाच् अंग को यणादेश न हो । जैसे - नियौ, नियः । यहाँ नी धातु, 'अन्येभ्योऽपि दृश्यते'[2] से क्विप् सर्वापहारीलोप, कृदन्तत्वात् प्रातिपदिक संज्ञा व स्वाद्युत्पति आदि सकल कार्य होने पर 'नी + औ' इस स्थिति में यणादेश इष्ट नहीं है । यदि अनेकाच् पदकृत्य को प्रस्तुत सूत्र में संगृहीत नहीं किया जाता, तो यहां भी यणादेश की अनिष्टापत्ति होने लगती । अब 'अचिश्नुधातु0'[3] सूत्र से इयङादेश होकर इष्ट रूप की सिद्धि हो जाती है ।

पदकृत्य - III.3

असंयोगपूर्वस्येति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में 'असंयोगपूर्वस्य' पदकृत्य संयोगपूर्व इवर्ण के यणादेश के वारण के लिए रखा गया है । यथा - यवक्रियौ । यवक्रियः । अगर प्रस्तुत पदकृत्य का प्रकृत सूत्र में ग्रहण नहीं किया जाता तो 'यवक्री + औ और यवक्री + अस्' इस स्थिति में संयोगपूर्व इवर्ण को 'औ' अच् परे रहते यणादेश हो जाता और 'यवक्र्यौ, यवक्र्यः' इस प्रकार के अनिष्ट रूपों की सिद्धि होती । अतः अनिष्टापत्ति के वारणार्थ प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण आवश्यक है ।

पदकृत्य - III.4

धातुनासंयोगविशेषणं किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में संयोग को धातु का विशेषण इस हेतु से बनाया गया है कि - उन्न्यौ, उन्न्यः आदि प्रयोगों में 'उत् + नी + औ, उत् + नी + अस्' ऐसी स्थिति

1- अष्टा0 6/4/77

2- वही 3/3/75

3- वही 6/4/77

बनने पर उपसर्ग के योग से इवर्ण के संयोगपूर्व होने से यणादेश का निषेध न हो जाये । प्रस्तुत सूत्र में यणादेश व 'यरोऽनुनासिके0' [1]से तकार को नकार होकर उन्न्यौ, उन्न्यः रूप निष्यन्न हो गये ।

पदकृत्य - IV.0

धातु का अवयव जो संयोग, वह पूर्व में नहीं है जिस उवर्ण के तदन्त अनेकाच् अंग को अजादि सुप् परे रहते यणादेश होता है ।[2] यथा - खलप्वौ । खलप्वः ।

पदकृत्य - IV.1

सुपीति किम् ?

प्रस्तुत ' ओः सुपि ' सूत्र में सुपि पदकृत्य इस हेतु से ग्रहण किया है कि किसी अन्य अजादि प्रत्यय के परे रहते यणादेश न हो । जैसे - लुलुवतुः ।

यहाँ लूञ् छेदने धातु, लिट्, लिट् के स्थान में तस्, तस् के स्थान में अतुस्, ' लिटिधातोरनभ्यासस्य '[3] से द्वित्व कर लेने पर ' लुलू + अतुस् ' इस स्थिति में लुत् उवर्णान्त अंग है, तथा अतुस् प्रत्यय अजादि भी है, परन्तु सुप् न होने से यणादेश न होकर अचिश्नुधातु0' [4]से उवङ् आदेश हो गया । सुप् ग्रहण न करते तो प्रस्तुत प्रयोग में भी यणादेश होक अनिष्ट रूप की प्राप्ति होने लगती ।

प्रस्तुत पदकृत्य का विवेचनात्मक अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अगर प्रकृत सूत्र में प्रस्तुत ' सुपि ' पदकृत्य का ग्रहण नहीं किय जाता तो लुलुवतुः प्रयोग में भी यणादेश होकर ' लुल्वतुः ' इस प्रकार के अनिष्ट रूप की प्राप्ति होत और भाषा के इष्ट प्रयोग की सिद्धि नहीं हो सकती थी ।

पदकृत्य - V.0

हु तथा श्नु प्रत्ययान्त अनेकाच् अंग को संयोगपूर्व में नहीं है जिसके, ऐसा उ उवर्ण, उसको अजादि सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते यणादेश होता हे ।[5] यथा - जुह्वति । सुन्वन्ति ।

---

1. अष्टा 0 8/4 44
2. वही 6/4/83
3. वही 6/1/8
4. अष्टा 0 6/4/77
5. वही 6/4/87

प्रस्तुत ' हुश्नुवोः सार्वधातुके ' सूत्र के ' हुश्नुवोः पद व्यधिकरण षष्ठी है तथा असंयोगपूर्व उवर्ण का एवं अनेकाच् अंग का विशेषण है । उवर्ण हु तथा श्न प्रत्यय का ही होना चाहिये, अन्य का नहीं ।

पदकृत्य - V.1

हुश्नुवोरिति किम् ?

विचार्यमाण सूत्र में ' हुश्नुवोः पदकृत्य का ग्रहण इसलि किया गया है कि किसी अन्य उवर्णान्त अनेकाच् अंग को सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते यणादेश हो । जैसे - योयुवति । रोरूवति ।

यहाँ यु एवं रू धातुओं से यङ् प्रत्यय, सन्यङोः,[1] गुण यङ्लुकोः,[2] यङोऽचि च[3] से यङ् प्रत्यय का लुक् होकर ' यो यु + झि, रो + रू + झि अदभ्यस्तात्[4] से झि के झकार को अत् आदेश हो जाने पर ' यो यु + अति, रो रू + अति ' ऐ स्थिति बनने पर प्रस्तुत सूत्र से यणादेश नहीं होगा ।

यदि सूत्र में ' हुश्नुवोः ' पदकृत्य का ग्रहण न किया जा तो अनिष्ट यणादेश की प्राप्ति होने लगती, और 'रोर्वति ' इस प्रकार के असाधुरूप की सिद्धि होत जो कि इष्ट नही है । अब ' अचिश्नुधातु0 '[5] से उवङादेश होकर ' रोरूवति ' व ' योयुवति ' सि हो जाते हैं ।

पदकृत्य - V.2

सार्वधातुक इति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में ' सार्वधातुके ' पदकृत्य के ग्रहण करने व प्रयोजन यह हे कि किसी अजादि आर्द्धधातुक प्रत्यय के परे रहते यणादेश न हो । जैसे - जुहुवतुः

यहां हु धातु, लिट्, लिट् के स्थान पर तस्, तस् के स्थान अतुस्, 'लिटिधातोरन0'[6] से द्वित्व व अभ्यासकार्य होकर 'जु + हु + अतुस् ' यह स्थिति बनने अतुस् प्रत्यय के आर्द्धधातुक होने के कारण यणादेश नहीं हुआ । पश्चात् 'अचिश्नुधातु0[7] से उव आदेश होकर जुहुवतुः रूप निष्पन्न हो जाता है ।

---

1. अष्टा0 6/1/9
2. वही 7/4/82
3. वही 2/4/74
4. अष्टा 0 7/1/4
5. वही 6/4/77
6. वही 6/1/8
7. वही 6/4/77

प्रस्तुत सूत्र में ' एरनेकाचो0 ' [1] सूत्र से असंयोगपूर्व पद की भी अनुवृत्ति आ रही है । अतः ' राध्नुवन्ति, आप्नुवन्ति ' इत्यादि प्रयोगों में उवर्ण से पूर्व संयोग होने से यणादेश कार्य नहीं होता ।

प्रकृत पदकृत्य का यदि हम विवेचनात्मक दृष्टि से अध्ययन करें, तो निष्कर्ष निकलता है कि यदि प्रस्तुत पदकृत्य का प्रकृत सूत्र में ग्रहण नहीं किया जाता तो ' जु हु + अतुस् इस स्थिति में आर्द्धधातुक प्रत्यय के परे रहने पर भी यणादेश हो जाता और ' जुहुवतुः ' की अपेक्षा जुह्वतुः ' इस प्रकार के अनिष्ट रूप की सिद्धि हो जाती ।

पदकृत्य - VI.0

गोह अंग की उपधा को उकारादेश होता है, अजादि प्रत्यय परे रहते । [2] यथा - निगूहति । निगूहक : ।

विचार्यमाण ' उदुपधायाः गोहः ' सूत्र 'गुहू संवरणे ' धातु के गुण करके गोह् निर्देश किया है । अतः जहाँ गुहू को गोह् ऐसा रूप बनेगा वहीं ऊकारादेश होगा ।

पदकृत्य - VI.1

उपधाया इति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में उपधायाः पदकृत्य का ग्रहण इस हेतु से किया गया है कि ' अलोऽन्त्यस्य ' [3] परिभाषा की प्रवृत्ति न हो पाये ।

यहाँ न्यासकार एवं पदमञ्जरीकार ने ' उपधायाः ' ग्रहण को उत्तरार्थ माना है । [4] इनका कहना हे कि ' ओः सुपि [5] सूत्र से 'ओः' पद की अनुवृत्ति आ रही है, अतः प्रस्तुत सूत्र में यदि ' उपधायाः ' पदकृत्य का ग्रहण न किया जाये तो भी कोई दोष आने की सम्भावना नहीं है । यदि ' ओः ' पद की अनुवृति नहीं लाते हैं, तो उपधाग्रहण की आवश्यकता होती है । पदमञ्जरीकार हरिदतमिश्र का कथन है कि ' गमहनजखन0 ' [6] सूत्र से विहित लोप उपधा का ही होवें, इस हेतु से उत्तरार्थ उपधाग्रहण पदकृत्य अति प्रयोजनवान् है ।

---

1. अष्टा0 6/4/82
2. वही 6/4/89
3. वही 1/1/51
4. न्या0 पद0 6.4.89 पृ० 441.
5. वही 6/4/83
6. अष्टा0 6/4/98

पदकृत्य - VII.0

दोष अंग की उपधा को ऊकारादेश होता है, णि परे रहते । [1] यथा - दूषयति। दूषयतः ।

पदकृत्य - VII.1

णाविति किम् ?

प्रस्तुत ' दोषोणौ ' सूत्र में णौ पदकृत्य के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि किसी अन्य गुणसमर्थ प्रत्यय के परे रहते दोष् को ऊकारादेश न होने पाये । णि के परे रहते ही ऊकारादेश हो । जैसे - दोषः ।

यहाँ दुष् धातु से घञ् प्रत्यय तथा 'पुगन्तलघूपधस्य च '[2] सूत्र से गुण होने पर दोषः रूप निष्पन्न हो जाता है । यदि प्रकृत पदकृत्य् ' णौ ' का सूत्र में ग्रहण नहीं किया जाता तो णि से भिन्न प्रत्यय के परे रहते भी ऊकारादेश हो जाता । ' दोष्+ अ ' इस स्थिति में यहाँ णि प्रत्यय का अभाव है तथा घञ् प्रत्यय की सत्ता है । अतः यहाँ भी ऊकारादेश हो जाता । णि के परे रहने पर ही उकारादेश हो, इस हेतु से णि ग्रहण प्रयोजनवान् है ।

पदकृत्य - VIII.0

हलाद् अंग की उपधा को निष्ठा प्रत्यय के परे रहते ह्रस्व हो जाता है । [3] यथा - प्रहलन्न । प्रहलन्नवान् ।

पदकृत्य - VIII.1

निष्ठायामिति किम् ?

प्रस्तुत ' हलादोः निष्ठायाम् ' सूत्र में निष्ठायाम् पदकृत्य का ग्रहण इसलिए किया गया हे कि निष्ठेतर प्रत्यय के परे रहते ह्रस्वादेश न हो । जैसे - प्रहलादयति

---

1. अष्टा 0 6/4/90
2. वही 7/3/86
3. वही 6/4/95

अगर प्रस्तुत पदकृत्य का प्रकृत सूत्र में ग्रहण नहीं किया जाता, तो ' प्रह्लादयति ' उदाहरण में भी ह्रस्व हो जाता । यहां प्र पूर्वक हलाद् धातु से णिच् प्रत्यय हुआ हे । प्रस्तुत सूत्र में निष्ठायाम् ' पदकृत्य का ग्रहण न होने पर यहां उपधा को हस्व होकर ' प्रह्लदयति ' इस प्रकार का अनिष्ट रूप निष्पन्न होता । अतः ' निष्ठायाम् ' पदकृत्य का ग्रहण सप्रयोजनार्थ किया गया है ।

पदकृत्य - IX.0

जो छादि अंग दो उपसर्गों से युक्त नहीं है,उसकी उपधा को घ प्रत्यय के परे रहने पर ह्रस्व हो जाता है । [1] यथा - उरश्छदः । प्रच्छदः ।

पदकृत्य - IX.1

अद्व्युपसर्गस्येति किम् ?

विचार्यमाण ' छादेर्घेऽद्व्युपसर्गस्य ' सूत्र में अद्व्युपसर्गस्य पदकृत्य का समावेश इस प्रयोजन से किया गया है कि जहां छादि अंग दो उपसर्गों से युक्त हो वहां घ प्रत्यय के परे रहते ह्रस्व न हो जाये । जैसे - समपछादः ।

इस प्रयोग में सम् तथा उपपूर्वक् छद् धातु से चुरादि णिच्, 'पुंसि संज्ञायां घ0' [2] सूत्र से घ प्रत्यय कर लेने पर ' समुप + छद् + णिच् + घ ' इस स्थिति में 'अतः उपधायाः ' [3] णेरणिटि [4] इत्यादि कार्य होकर 'समुप छाद् अ ' यह स्थिति प्राप्त होने पर अद्व्युपसर्गस्य पदकृत्य् के ग्रहण सामर्थ्य से ह्रस्व नहीं होता तथा समुपछादः यह इष्ट प्रयोग सिद्ध हो जाता है । अन्यथा प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण न करने पर छादि अंग के दो उपसर्गों से युक्त होने पर भी ' छाद् ' की उपधा को ह्रस्व होकर 'समुपछदः' इस प्रकार के अनिष्ट प्रयोग की सिद्धि होती ।

पदकृत्य - X.0

गम्, हन्, जन्, खन एवं घस् इन अंगों की उपधा का लोप हो जाता है । अङ्.ग भिन्न अजादि कित्, ङि.त् प्रत्यय के परे रहते । [5]

---

1. अष्टा0 6/4/96
2. वही 3/3/118
3. वही 7/2/116
4. अष्टा0 6/4/51
5. वही 6/4/98

पदकृत्य - X.1

क्ङितीति किम् ?

प्रस्तुत ' गमहनजन0 ' सूत्र में क्ङिति पदकृत्य का समावेश इस हेतु से किया गया है कि जब इन अङ्गों से उत्तर कित् अथवा ङित् प्रत्यय होगा, तब ही उपधालोप होगा, अन्य अजादि प्रत्यय परे हो तो उपधा लोप न हो जाये । जैसे - गमनम् । हननम् ।

इन प्रयोगों में गम् तथा हन् धातुओं से ल्युट् प्रत्यय एवं ' युवोरनाकौ '[1] से अनादेश हो जाता है । यहाँ अन प्रत्यय अजादि तो है, परन्तु कित् अथवा ङित् नहीं है । अतः प्रकृत पदकृत्य के कारण उपधालोप न होकर गमनम् एवं हननम् रूप सिद्ध हो जाते हैं ।

पदकृत्य - X.2

अनङीति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में ' अनङि ' पदकृत्य इसलिए समाविष्ट किया गया है कि जब गमादि अंगों से परे अङ् प्रत्यय हो तो उपधा का लोप न हो । जैसे - अगमत् ।

यहाँ गम् धातु, लुङ्, च्लिलुङि [2], इतश्च, [3]पुषादिद्युताद्य0 सेच्लि के स्थान में अङ्, अडागम आदि समस्त कार्य कर लेने पर ' अ + गम् + अङ् + त ' इस स्थिति में अङ् प्रत्यय के परे रहते गम् की उपधा का लोप नहीं हुआ । यदि प्रस्तुत सूत्र में अनङि पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया होता तो ' अगमत् ' प्रयोग में भी अनिष्ट उपधालोप की प्राप्ति होने लगती ।

पदकृत्य - XI.0

तन तथा पत अङ्ग की उपधा का लोप हो जाता है, वेद विषय में । अजादि कित्, ङित् प्रत्यय के परे रहते । [5] यथा - वितत्निरे । पप्तिम ।

---

1. अष्टा0 7/1/1
2. वही 3/1/43
3. वही 3/4/100
4. अष्टा0 3/1/55
5. वही 6/4/99

पदकृत्य - XI.1

छन्दसीति किम् ?

प्रस्तुत ' तनिपत्योश्छन्दसि ' सूत्र में छन्दसि के समावेश का यह हेतु है कि भाषा ' विषय में उपधा का लोप न होवे । यथा - वितेनिरे । पेतिम ।

वितेनिरे इस उदाहरण में वि उपसर्गपूर्वक तन् धातु, लिट्लकार, लिटस्तझयोरेशिरेच् '[1] लिटिधातोरन0'[2] से द्वित्व, ' अतएकहल्मध्ये0 '[3] से एत्वाभ्यास लोप होकर वितेनिरे यह प्रयोग सिद्ध होता है । यदि प्रस्तुत सूत्र में छन्दसि पद का अग्रहण होता, तो यहां भी उपधा का लोप हो जाता, जो कि अनिष्ट है । इसी प्रकार पत् धातु से लिट् लकार उत्तमपुरूष बहुवचन में ' पेतिम ' रूप बन जाता हे । अतः इष्ट सिद्धि हेतु प्रकृत पदकृत्य का ग्रहण आवश्यक है ।

पदकृत्य - XII.0

घस् तथा भस् अङ्.ग की उपधा का लोप वेदविषय में हलादि तथा अजादि कित्, डि.त् प्रत्यय के परे रहते होता है ।[4]

यथा - सग्धिः । बब्धाम् । बप्सति ।

प्रस्तुत ' घसिभसोर्हलि च ' सूत्र में गृहीत हलि पदकृत्य का महाभाष्यकार भगवान् पतञ्जलि ने प्रत्याख्यान कर दिया है । उनका कथन है कि हलादि कित्, डि.त् प्रत्यय से अन्यत्र भी घस् तथा भस् अङ्.ग की उपधा का लोप देखा जाता है । जैसा कि सूत्र के मूल उदाहरणों में बप्सति प्रयोग उद्घृत किया गया है । बप्सति प्रयोग में भस् धातु, लट्, झि, ' श्लौ '[5] से द्वित्व, 'अदभ्यस्तात्'[6] से झि को अत् आदेश आदि कार्य होकर ' ब भस् - अ ति ' ऐसी स्थिति में प्रस्तुत सूत्र से उपधा लोप होता है । इस प्रकार अजादि प्रत्ययों के परे रहते भी लोप इष्ट है, एवं हलादियों में भी और अच् का यहाँ अधिकार नहीं है । अतः बिना हल के ग्रहण किये ही सामान्य रूप से हलादि व अजादि में लोप हो जाया करेगा । हल् ग्रहण की कोई आवश्यकता नहीं है ।

---

1. अष्टा0 3/4/81
2. वही 6/1/8
3. वही 6/4/120
4. अष्टा0 6/4/100
5. वही 6/1/10
6. वही 7/1/4

पदकृत्य - XIII.0

हु तथा झलादि अंग से उत्तर हलादि ।

यथा - जुहुधि । भिन्द्धि ।

पदकृत्य - XIII.1

हुझल्भ्य इति किम् ?

विचार्यमाण ' हुझल्भ्योहेर्धिः' सूत्र में हुइ गृहीत है कि हु तथा झलन्त अड. से उत्तर ही ' हि ' को ' धि आदेश हो, नहीं । जैसे - क्रीणीहि । इस प्रयोग में डुकृञ् द्रव्यविनिमये धातु से लोट्, लोट् के सेहर्पिच्च [2] क्रयादिभ्यः श्ना,[3] ई हल्यघोः, [4] से ईकारादेश होकर ' क्री णी + हि ' इस हु तथा झलन्त्अंग का अभाव होने से हि को धि आदेश नहीं हुआ ।

प्रस्तुत पदकृत्य के विवेचनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि अगर प्रकृत सूत्र में ' हुझल्भ्यः ' पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता, तो ' क्री + णी + हि ' इस अवस्था में हु तथा झलन्त अङ्. का अभाव होते हुए भी यहाँ हि को धि आदेश हो जाता तथा भाषा की दृष्टि से सर्वथा असाधु रूप ' क्रीणीधि ' निष्पन्न हो जाता । अतः भाषा के साधु स्वरूप को यथावत् रखने के लिए प्रस्तुत पदकृत्य का ग्रहण सर्वथा उपयुक्त है ।

पदकृत्य - XIII.2

हेरिति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में ' हे ' पदकृत्य इस हेतु से ग्रहण किया गया है कि हु तथा झलन्त अङ्. से उत्तर ' हि ' को ही ' धि ' आदेश हो, किसी अन्य शब्द को धि आदेश न होने पाये । यथा - जुहुताम् ।

---

1. अष्टा0 6/4/101
2. वही 3/4/87
3. वही 3/1/81
4. वही 6/4/113

यहाँ हु धातु,

जुहोत्यादिभ्यः श्लु,[2] श्लौ[3] से द्वित्व आदि समस्त कार्य कर

हु अंग तो वर्तमान हे, परन्तु इससे उत्तर हि न होकर तस् प्रत्यय

हुआ । पश्चात् ' तस्थस्थमिपां0 '[4] सूत्र से तस् के स्थान में ताम् आ

निष्पन्न हो जाता है ।

प्रस्तुत पदकृत्य का निष्कर्ष रूप में विव

है कि प्रकृत पदकृत्य ' हेः ' का प्रस्तुत सूत्र में ग्रहण न करने से ' जु + हु + तस्

में ' हु ' से उत्तर ' हि ' के विद्यमान न होते हुए भी धि आदेश हो जाता एवं ' जुहुधि '

असाधु रूप निष्पन्न होकर ' जुहुताम् ' साधुरूप की निष्पति नहीं हो सकती थी । अतः प्रकृत पद

का ग्रहण अनिवार्य है ।

पदकृत्य - XIV.0

अडि॰त् हि को भी धि आदेश होता है, वेद विषय में ।[5] यथा - सोमं रारन्धि

पदकृत्य - XIV.1

अडि॰त् इति किम् ?

प्रस्तुत ' अडि॰तश्च ' सूत्र में ' अडि॰तः ' पदकृत्य के ग्रहण का यह प्रयोजन है कि ' वा छन्दसि '[6] सूत्र के नियम से हि पक्ष में अडि॰त् भी होता है । अतः अडि॰त् पक्ष में ही ' हि ' को ' धि ' आदेश होने पाये , डि॰त् पक्ष में न हो । यथा - हव्यं प्राणीहि ।

प्रकृत पदकृत्य पर विवेचनात्मक रूप से दृष्टिपात् करें तो स्पष्ट है कि अगर प्रकृत पदकृत्य का ग्रहण नहीं करें तो डि॰त् पक्ष में भी वेद विषय में हि को धि आदेश हो जायेगा । ' हव्यं प्राणीहि ' प्रयोग में ' हि ' प्रत्यय ' सेहसीपिच्च '[7] एवं ' सार्वधातुकमपित्[8] ' सूत्रों के नियम से डि॰त् है । अतः अडि॰तश्च सूत्र से हि को धि आदेश नहीं होता, अन्यथा डि॰त् पक्ष में भी हि को धि आदेश होकर ' प्राणीधि ' ऐसा रूप निष्पन्न होता जो भाषा की दृष्टि से सर्वथा अनिष्ट रूप होता । अतः अडि॰त् पदकृत्य का ग्रहण सर्वथा उपयुक्त एवं अपरिहार्य है ।

1.	अष्टा0	3/1/68	4.	अष्टा0	3/4/101
2.	वही	2/4/75	5.	वही	6/4/103
3.	वही	6/1/10	6.	वही	6/1/102

पदकृत्य - XV.0

अकारान्त अड. से उत्तर ' हि ' व..

पदकृत्य - XV.1

अत इति किम् ?

प्रस्तुत ' अतो हेः ' सूत्र में 'अतः के लिए रखा गया है इस प्रश्न का उत्तर यह है कि अकारान्त अड. से उतर ही अनकारान्त अङ्ग. से उत्तर न हो । यथा - युहि । रुहि ।

इन उदाहरणों में यु एवं रू धातुओं से लोट, सेह्र[2] कर्तरिशप्,[3] अदिप्रभृतिभ्यः शपः[4] आदि समस्त कार्य होने पर ' रू + हि, यु + हि ' इस स्थिति अनेकारान्त अङ्ग. से उत्तर हि होने से हि का लुक् नहीं हुआ ।

अगर यहां पर प्रकृत पदकृत्य ' अतः ' का प्रयोग नहीं किया जाता, तो अनकारान्त अङ्ग. से उत्तर भी हि का लोप हो जाता और परिणामस्वरूप ' रू + हि, यु + हि ' इस स्थिति में हि का लोप होकर केवलमात्र ' रू ' एवं ' यु ' मात्र ही शब्दों की निष्पत्ति होती, जो भाषा की दृष्टि से सर्वथा अशुद्ध रूप बनते । अतः ' अत ' पदकृत्य सर्वथा उपयुक्त है ।

पदकृत्य - XVI.0

संयोग पूर्व में नहीं है जिससे ऐसा जो उकार, तदन्त जो प्रत्यय, तदन्त अङ्ग. से उत्तर हि का लुक् हो जाता है ।[5] यथं - चिनु । सुनु ।

यहाँ असंयोगपूर्व पद उकार का विशेषण है, न कि उकारान्त प्रत्यय का । इसी हेतु से ' आप्नुहि ' में नु प्रत्यय के अवयव उकार से पूर्व प् न् का संयोग होने से ' हि ' का लुक् नहीं होता । उकारान्त प्रत्यय का विशेषण बनाने पर नु प्रत्यय से पूर्व संयोग न होने के कारण यहाँ भी लुक् प्राप्त हो जाता । अतः असंयोगपूर्व पद को उकार का विशेषण स्वीकृत किया जाता है ।

---

1. अष्टा0 6/4/105
2. वही 3/4/87
3. वही 3/1/68
4. अष्टा0 2/4/72
5. वही 6/4/106

पदकृत्य - XVI.1

उत ६

इस हेतु से गृहीत है कि उक

नहीं । जैसे - लुनीहि । पुनीहि

सेर्ह्यपिच्च [1] क्रयादिभ्यः श्ना [2] प्वां

हि, पुनी + हि ' इस स्थिति में हि से पू

अ

यहां उकारान्त अङ्ग. का अभाव होने पर

ही सहायता प्रदान करता, अतः प्रकृत पदकृत्य व

पदकृत्य - XVI.2

प्रत्ययादिति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में

धातु के उकार से उत्तर हि का लुक् न होने पाये । जैसे

अगर यहाँ प्रकृत प

जाता, तो प्रत्यय के उकार की अपेक्षा धातु के उकार से उत्तर ह

हि, यु + हि ' में रू एवं यु धातु हैं । अतः इनमें विद्यमान उ

उकार न होने से यहां हि का लुक् नहीं हुआ, जिसके कारण भाषा

पदकृत्य - XVI.3

असंयोगपूर्वादिति किम् ?

विचार्यमाण सूत्र में 'असंयोगपूर्वात् '

कि जिस उकार से पूर्व संयोग हो, उससे उत्तर हि का लुक् न हो । यथा - प्राप्नुहि

---

1. अष्टा0 3/4/87
2. वही 3/1/81
3. अष्टा0 7/3/80
4. वही 6/4/113

प्रकृत पदकृत्य के दोनों प्रत्युदाहरणों ' प्राप्नुहि, राध्नुहि ' में नकारोतर विद्यमान उकार से पूर्व संयोग विद्यमान है । अतएव यदि प्रस्तुत पदकृत्य ' असंयोगपूर्वात् ' ग्रहण नहीं किया जाता तो यहां भी हिं का लुक् होकर अनिष्टापत्ति होती, जो भाषा के साधु स्वरूप को भी हानि पहुंचाती ।

पदकृत्य - XVII.0

उकार प्रत्ययान्त कृ अंग के अकार के स्थान में उकारादेश हो जाता है, कित्, डि.त् सार्वधातुक् प्रत्यय के परे रहते ।[1] यथा - कुर्वन्ति ।

पदकृत्य - XVII.1

सार्वधातुकग्रहणं किम् ?

उकारान्त कृ धातु सार्वधातुकत्व धर्म से सदैव ही युक्त रहता है, पुनः सूत्र में सार्वधातुक पदकृत्य के ग्रहण करने का यह उद्देश्य है कि भूतपूर्व सार्वधातुक के परे रहते भी अकार के स्थान में उकारादेश हो जाये । जैसे - कुरू । सुनु ।

इन उदाहरणों में हि प्रत्यय का 'उतश्चप्रत्ययात्0'[2] सूत्र से लुक् हो जाने पर 'कर + उ' इस स्थिति में कित्, डि.त सार्वधातुक के परत्व का अभाव होने से उकारादेश नहीं हो सकता । प्रत्यय लक्षण का भी 'न लुमताऽङ्गस्य'[3] से निषेध हो जाता है । इस परिस्थिति में प्रकृत पदकृत्य सार्वधातुक के ग्रहण सामर्थ्य से वर्तमान में सार्वधातुक का अभावहोने से भी अकार के स्थान में उकारादेश हो जाता है । प्रस्तुत सूत्र में क्डि.त् पद का अनुवर्तन होने से 'करोमि, करोषि' आदि में उकारादेश नहीं होता ।

पदकृत्य - XVIII.0

श्ना तथा अभ्यस्त अड्.ग के आकार का लोप हो जाता है, कित्, डि.त् सार्वधातुक, के परे रहते[4] । यथा - लुनते । मिमते ।

यह आकारलोप कित्, डि.त् सामान्य सार्वधातुक के परे रहते कहा गया है, परन्तु 'ई हल्यघोः'[5] सूत्र में हलादि कित्, डि.त्, सार्वधातुक् में ईकारादेश का विधानहोने से पारिशेष न्याय से आकारलोप अजादि सार्वधातुक में होता है ।

1- अष्टा0 6/4/110
2- वही 6/4/106
3- वही 1/1/62
4 अष्टा: 6/4/112
5- वही 6/4/113

पदकृत्य - XVIII.1

श्नाभ्यस्तयोरिति किम् ?

प्रस्तुत 'श्नाभ्यस्तयोरातः' सूत्र में 'श्नाभास्तयोः पदकृत्य इसलिए पढ़ा गया है कि इन्हीं अंगों के आकार का लोप होवे, अन्य अड्.ग के आकार का लोप न हो जाये । जैसे - यान्ति । वान्ति ।

इन प्रयोगों में या तथा वा धातुओं से लट्, झि, कर्तरिशप्[1], झोडन्तः[2] आदि कार्य होकर 'या - अन्ति, वा - अन्ति' इस स्थिति में या तथा वा अंगों के आकार का लोप नही हुआ । यदि श्नाभ्यस्तयोः[3] पदकृत्य का ग्रहण न किया जाता, तो यान्ति, वान्ति प्रयोगों में भी आकार का लोप प्राप्त होता ।

पदकृत्य - XVIII.2

आत इति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में 'आतः' पदकृत्य को रखने का यह प्रयोजन है कि श्ना तथा अभ्यस्त के आकार का ही लोप हो, किसी अन्य वर्ण का लोप न हो जाये । जैसे - बिभ्रति ।

यहाँ भृ धातु से लट्, झि, कर्त्तरिशप्, जुहोत्यादिभ्यःश्लुः[4] श्लौ,[5] उरत्,[6] अभ्यासे चर्च[7] एवं भृञामित्[8] से इत्वादेश, अदभ्यस्तात्[9] आदि कार्य होने पर 'बिभृ + अति' इस स्थिति में 'बिभृ' यह अभ्यस्त अंग 'उभे अभ्यस्तम्'[10] सूत्र से है तथा 'अति' यह अजादि ङित् सार्वधातुक् भी है, परन्तु अभ्यस्त अड्.ग के अन्त में आकार न होने से लोप नहीं हुआ । अगर यहाँ प्रकृत पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता तो यहां भी भाषा में अनिष्टापत्ति होती ।

1- अष्टा0	3/1/68	6- अष्टा0	7/4/66
2- वही	7/1/3	7- वही	8/4/53
3- वही	6/4/112	8- वही	7/4/76
4- वही	2/4/75	9- वही	7/1/4
5- वही	6/1/10	10- वही	6/1/5

पदकृत्य - XIX.0

श्नान्त अङ्ग एवं घु संज्ञक को छोड़कर जो अभ्यस्त संज्ञक अङ्ग उनके आकार के स्थान में ईकारादेश हो जाता है, हलादि कित् ङित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते[1]। यथा - लुनीतः । मिमीते ।

पदकृत्य - XIX.1

हलीति किम् ?

प्रस्तुत 'ईहल्यघोः' सूत्र में 'हलि' पदकृत्य को रखने का यह प्रयोजन है कि हलादि कित्, ङित् सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते ही ईत्व होवे, अजादि में न होने पाये । जैसे - लुनन्ति ।

यहाँ लूञ् छेदने धातु से लट्, झि, झोऽन्तः[2], क्र्यादिभ्यः श्ना,[3] प्वादीनां ह्रस्वः[4] आदि कार्य करने पर 'लुना + अन्ति' इस स्थिति में 'लुना' इस श्नाप्रत्ययान्त अङ्ग से उत्तर हलादि सार्वधातुक प्रत्यय न होकर अजादि सार्वधातुक प्रत्यय है । अतः प्रस्तुत पदकृत्य हलि ग्रहण सामर्थ्य से ईत्वादेश न होकर 'श्नाभ्यस्तयोरातः'[5] सूत्र से आकार का लोप ~~का लोप~~ होकर 'लुनन्ति' रूप सिद्ध हो गया ।

अगर यहाँ प्रकृत पदकृत्य का ग्रहण नहीं किया जाता तो 'लु ना + अन्ति' इस स्थिति में अजादि सार्वधातुक प्रत्यय के परे रहते भी श्नान्त आकार के स्थान में ईकारादेश हो जाता तथा उस स्थिति में यणादेश होकर 'लुन्यन्ति' भाषा में इस प्रकार का अनिष्ट परिवर्तन हो जाता ।

पदकृत्य - XIX.2

अघोरिति किम् ?

प्रस्तुत सूत्र में 'अघोः' पदकृत्य इसलिए रखा गया है कि घु संज्ञक धातुओं को ईत्वादेश न हो जाये । जैसे - दत्तः । धत्तः ।

1- अष्टा0	6/4/113	4- अष्टा0	7/3/80
2- वही	7/1/3	5- वही	6/4/112
3- वही	3/1/81		

प्रस्तुत पदकृत्य के इन प्रत्युदाहरणों में दा एवं धा धातुओं से लट्, तस्, कर्तरिशप्,[1] श्लु, श्लौ,[2] ह्रस्वः[3] आदि कार्य करने पर 'द दा + तस्, द धा + तस्' इस स्थिति में दा तथौ धा धातुओं से परे हलादि ङि.त् सार्वधातुक प्रत्यय परे है, परन्तु इन धातुओं की 'दाधाघ्वदाप्'[4] सूत्र में घु संज्ञा होने से ईत्वादेश नहीं हुआ । पश्चात् 'श्नाभ्यस्तयोरातः'[5] सूत्र से आकारलोप एवं 'खरिच'[6] से चर्त्व होकर क्तः एवं ध्तः रूप सिद्ध होते हैं । प्रकृत पदकृत्य का ग्रहण न करने से भाषा में साधु रूपनिष्पन्न न होकर अनिष्टापत्ति होती ।

पदकृत्य - XX.0

लिट् परे रहते जिस अङ्.ग के आदि को आदेश नहीं हुआ है, उसके दो असहाय हलों के बीच में वर्तमान जो अकार उसको एकारादेश तथा अभ्यास का लोपहो जाता है, कित् - ङि.त् लिट् के परे रहते ।[7] यथा - पेचतुः । पेचुः ।

पदकृत्य - XX.1

अत इति किम् ?

प्रस्तुत 'अत एकहल्मध्येऽनादेशादेर्लिटि' सूत्र में 'अतः'पदकृत्य इसलिए रखा गया हे कि जब दो असहाय हलों के बीच में कोई अकार आये, तब ही सूत्रोक्त एत्वाभ्यासलोप रूप कार्य हो, किसी अन्य वर्ण की मध्यस्थता में न हो । यथा - दिवितुः ।

यहाँ दिव् धातु से परे कित् लिट् प्रत्यय वर्तमान है तथा दो असहाय हल् भी हैं, परन्तु उन दो हलों के बीच अकार न होकरइकार की सत्ता है । अतः एलाभ्यासलोप नहीं हुआ । अगर 'उक्त' पदकृत्य का यहां ग्रहण नकिया जाता, तो 'देवतुः' इस प्रकार का अनिष्ट रूप निष्पन्न होता, जो भाषा के असाधु स्वरूप का बोधक होता ।

पदकृत्य - XX.2

तपरकरणं किम् ?

प्रस्तुत सूत्र के 'अतः' पदकृत्य में अकार को तपर इसलिए किया है कि आकार के स्थान में एत्वादेश न हो जाये । जैसे - ररासे ।

1- अष्टा0	3/1/68	5- अष्टा0	6/4/112
2- वही	6/1/10	6- वही	8/4/54
3- वही	7/4/59	7- वही	6/4/120
4- वही	1/1/19		

उपर्युक्त प्रयोग में रास् धातु से परे 'लिटस्तझयोरेशिरेच्' [1] सूत्र से एश् आदेश हुआ है । इस प्रकार कित् लिट् की तो उपस्थिति है तथा दो हलों की भी सत्ता है, परन्तु उन हलों के बीच अकार न होकर आकार है । अतः एत्वाभ्यासलोप नहीं हुआ । यदि सूत्रस्थ 'अत' पदकृत्य को तपर नहीं किया जाता, तो 'अणुदित्सवर्णस्य0' [2] सूत्र के नियम से आकार की उपस्थिति में भी सूत्रोक्त कार्य होने लगता, जोकि इष्ट नहीं है । अतः भाषा के साधुस्वरूपबोधन के लिए प्रकृत पदकृत्य की उपस्थिति आवश्यक है ।

पदकृत्य - XX.3

एकहल्मध्य इति किम् ?

विचार्यमाण सूत्र में 'एकहल्मध्ये' पदकृत्य को रखने का यह प्रयोजनहै कि दो असहाय हलों के बीच ही सूत्रोक्त कार्य हो । एक अथवा बहुतों के बीच कभी नहो । जैसे - ररक्षतुः ।

प्रकृत पदकृत्य के इस प्रत्युदाहरण के अन्तर्गत रक्ष् धातु में दो हल् न होकरतीन हल् वर्तमान हैं । अतः एत्वाभ्यासलोप रूपकार्य नहीं हुआ, तथा भाषा का साधु स्वरूप यथावत् रहा ।

पदकृत्य - XX.4

अनादेशादेरिति किम् ?

प्रस्तुत 'एकहल्मध्ये0' सूत्र में 'अनादेशादेः' पद को इस प्रयोजन हेतु रखा गया है कि लिट् के परे रहते धातु के आदि में कोई आदेश हो जाने पर एत्वाभ्यासलोप न हो जाये । जैसे - चकणतुः । चकणुः ।

प्रकृत पदकृत्य के इन प्रत्युदाहरणों में कण् धातु के आदि ककार को 'कुहोश्चु' [3] सूत्र से चकारादेश हुआ है । अतः इस धातु के अनादेशादि नरहने से सूत्रोक्त कार्य नहीं हुआ । अन्यथा प्रकृत पदकृत्य के अग्रहण से भाषा में अनिष्टापत्ति होती ।

1- अष्टा0 3/4/81

2- वही 1/1/68

3- अष्टा0 7/4/62